3. Books ; and
4. Amnesty (assurance of protection or safety).
According to the code of conduct of a sravak all the fou
are worth giving.

३३२ **दाणं भोयणमेत्तं दिण्णइ धण्णो हवेइ सायारो।**
पत्तापत्त-विसेसं संदंसणे किं वियारेण॥३२॥

सागार मात्र इक भोजन दान से भी, लो धन्य धन्यतम हो धनवान से भी
दुः पात्र पात्र इस भाँति विचार से क्या? ले आम पेट भर ले!! बस पेड़ से क्या?॥३२

332. A house-holder (sravak) is blessed, just (merely) by
providing food (to the hungry). What is the use o
considering whether one deserves it or not ?

३३३ **साहूणं कप्पणिज्जं, जं न वि दिण्णं कहिं पि किंचि तहिं।**
धीरा जहुत्तकारी, सुसावया तं न भुंजंति॥३३॥

शास्त्रानुकूल जल अन्न दिये न जाते, भिक्षार्थ भिक्षुक वहाँ न कदापि जाते
वे धीर वीर चलते समयानुकूल, लेते न अन्न प्रतिकूल कदापि भूल॥३३

333. Good sravaks-who properly follow the prescribed cod
of conduct and who is firm (solemn) and sacrifing do no
take food in homes where in ascetic are not fed in
appropriate (and desirable) manner.

३३४ **जो मुथि-भुत्त-वसेसं, भुंजइ सो भुंजइ जिणुवदिट्ठ।**
संसार-सार-सोक्खं, कमसो णिव्वाण-वर-सोक्खं॥३४॥

सागार जो अशन को मुनि को खिलाके, पश्चात सभी मुदित हो अवशेष पाके
वे स्वर्ग मोक्ष क्रमवार अवश्य पाते, संसार में फिर कदापि न लौट आते॥३४॥

334. Taking food by the sravak who himself take the remaning
food after feeding an ascetic/mendicant first, is a
real/true shravak.
Such a shravak attains the material happiness of the

world as preached by jina (Jino-padista sansara-ka-sarbhuta sukha) and the eternal bliss of salvation, in a phased manner (respectively).

३३५ **जं कीरइ परि-रक्खा, णिच्चं मरण-भय-भीरु-जीवाणं।**
तं जाण अभय-दाणं, सिंहामणिं सव्व-दाणाणं॥३५

जो काल से डर रहे उनको बचाना, माना गया अभयदान अहो सुजाना!
है चंद्रमा अभयदान ज्वलन्त दीखे, तो शेष दान उडु हैं पड़ जाय फीके॥३५॥

335. Amnesty (Abhaya) means providing protection to living beings who are afraid of death. This kind of charity tops (is at the top of) all charities.

(24) श्रमण धर्मसूत्र

(अ) समता

३३६ **समणोत्ति संजदो त्ति य, रिसि मुणि साधुत्ति वीदरागो त्ति।**
णामाणि सुविहिदाणं अणगार भदंत दंतो त्ति ॥१॥

ये वीतराग अनागार भदंत प्यारे, सादू ऋषी श्रमण संयत सन्त सारे।
शास्त्रानुकूल चलते हमको चलाते, बन्दूँ उन्हें विनय से शिर को झुकाते॥१॥

336. Sramana (Jain recluses), samyata (lone, who has controlled his senses), Rishi (saint with miraculous powers), Muni (Saint with clairvoyance and telepathic knowledge), sadhu (saints of long standing), vitaraga (nonattach saint), Anagar (houseless ascetic), (monk), Dhanta ( ) all these terms indicate persons, who follow conduct as prescribed by scriptures.

३३७ **सीह-गय-वसह-मिय-पसु, मारुद-सूरुवहि-मंदरिंदु-मणी।**
खिदि-उरगंवर-सरिसा, परम-पय-विमग्गया साहू॥२॥

गंभीर नीर-निधि से, शशि से सुशान्त, सर्वसहा अवनि से, मणि मंजुकान्त
तेजोमयी अरुण से, पशु से निरीह, आकाश से निरवलम्बन ही सदी
निस्संग वायु सम, सिंह-समा प्रतापी, स्थायी रहे उरग से न कहीं कदा
अत्यन्त ही सरल हैं मृग से सुडोल, जो भद्र हैं वृषभ से गिरि से अडो
स्वाधीन साधु गज सादृश स्वाभिमानी, वे मोक्ष शोध करते सुन सन्त वाणी॥२

337. The saints (sages), engaged in search of supreme statu
are as valiant (heroic) as loins as full of self-respect
elephant, as gentle as bull; as simple (child-like) as de
disinterested like cattle, alone like wind, splendi
(radiant) like sun; deep as ocean, form like mount mer
cool as moon, glamorous (lustrous) as gems, endurin
such as earth; having uncertain shelter (Anitya-Asray
like serpents and supportless/baseless like sky. (The
are fourteen smiles of saints).

३३८ बहवे इमे असाहू, लोए वुच्चंति साहुणो।
न लवे असाहुं साहुत्ति, साहुं साहु त्ति आलवे॥३॥

हैं लोक में कुछ यहाँ फिरते असाधु, भाई तथापि सब वे कहलायें साध
मैं तो असाधु-जन को कह दूँ न साधु, पै साधु के स्तवन में मन को लगा दूँ॥३

338. There are many immoral (unrighteous) persons (Asadhu
who are addressed (designated) in the world, as saints. (Bu
such immoral Persons should not be addressed (designated
as saints; only (true) saints be so addressed (designated).

३३९ नाणं-दंसण-संपन्न, संजमे य तवे रयं।
एवं गुण-समाउत्तं, संजयं साहु-मालवे॥४॥

सम्यक्त्व के सदन हो वर-बोध-धाम, शोभे सुसंयततया तप से ललाम
ऐसे विशेष गुण आकर हो सुसाधु, तो बार-बार शिर मैं उनको नवा दूँ॥४॥

339. Only those persons who have controlled their senses who
possess Right faith an d (Right) knowledge; who are having
attributes of the like nature should be termed as saints.

३४० न वि मुण्डिएण समणो, न ओंकारेण बम्भणो।
न मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण न तावसो॥५॥

एकान्त से 'मुनि', न कानन-वास से हो, स्वामी नहीं 'श्रमण' भी कचलोंच से हो।
ओंकार जाप जप, 'ब्राह्मण' ना बनेगा, छालादि को पहन, 'तापस' ना कहेगा॥५॥

340. No one becomes a sraman merely by getting their hair shaved, no one becomes a Brahman by merely muttering (silently repeating) Om; no one becomes a muni merely by staying in forest; and no one becomes a rshi (Hermit) merely by wearing garments made of grass (knsa-civara).

३४१ समयाए समणो होइ, बम्भचेरेण बम्भणो।
नाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो॥६॥

विज्ञान पा नियम से 'मुनि' हो यशस्वी, सम्यक्तया तप तपे तब हो 'तपस्वी'।
होगा वही 'श्रमण' जो समता धरेगा, पा ब्रह्मचर्य फिर 'ब्राह्मण' भी बनेगा॥६॥

341. (Instead) one becomes a sramana due to equality (samata); a Brahmana due to celibacy; a muni due to knowledge; and a recluse due to austerities.

३४२ गुणेहि साहू अगुणेहिऽसाहू, गिण्हाहि साहूगुण मुंचऽसाहू।
वियाणिया अप्पग-मप्पएणं, जो राग-दोसेहिं समो स पुज्जो॥७॥

हो जाय साधु गुण पा, गुण खो असाधु, होवो गुणी, अवगुणी न बनो न स्वादु।
जो राग रोष भर में समभाव धारें, वे वन्द्य पूज्य निज से निज को निहारें॥७॥

342. One becomes a saint due to (his) attributes/qualities; he becomes unsaintly due to his blemishes (Ahunas/lack of attributes). Hence, adopt the attributes of a saint and renounce unsaintleness. Only that one is worshippable (puja) who realises soul through soul and is equanimous (in different towards attachment and aversion).

३४३ देहादिसु अणुरत्ता, विसयासत्ता कसाय-संजुत्ता।
अप्प-सहावे सुत्ता, ते साहू सम्म-परिचत्ता ॥८॥

जो देह में रम रहे विषयी कषायी, शुद्धात्म का स्मरण भी करते न भा
वे साधु होकर बिना दृग, जी रहे हैं, पीयूष छोड़कर हा ! विष पी रहे हैं॥८

343. The saints, who are attached with body etc; who a
engrossed in sense subjects (visaya sakta) who a
passionate; and who are unwakeful (asleep unconsciou
in respect of the nature of soul-lack Righteousness.

३४४ बहुं सुणेई कण्णेहिं, बहुं अच्छीहिं पेच्छइ।
न य दिट्ठं सुयं सव्वं, भिक्खू अक्खाउमरिहइ ॥९॥

भिक्षार्थ भिक्षु चलते बहु दृश्य पाते, अच्छे बुरे श्रवण में कुछ शब्द आ
वे बोलते न फिर भी सुन मौन जाते, लाते न हर्ष मन में न विषाद लाते॥९

344. A mendicant, who goes forward for begging food, he
many good as well as bad news and beholds observe
sees/beholds many good as well as bad scenes. But h
does not disclose any such thing to any body. In oth
words he remains indifferent (Udasina).

३४५ सज्झाय-झाण-जुत्ता रत्तिं ण सुवंति ते पयामं तु।
सुत्तत्थं चिंतता णिद्दाय वसं ण गच्छंति ॥१०॥

स्वाध्याय ध्यान तप में अति मगन होते, जो दीर्घ काल तक हैं निशि में न सो
तत्वार्त चिंतन सदा करते मनस्वी, निद्राजयी इसलिए बनते तपस्वी॥१०

345. The saints who are engaged in studies and meditatio
sleep less during night. They are not overpowered b
sleep, because they continue to reflect upon sutra
(aphorisms/formulaes) and their significance.

३४६ निम्ममो निरहंकारो, निस्संगो चत्तगारवो।
समो य सव्वभूएसू, तसेसु थावरेसु य ॥११॥

जो अंग संग रखता ममता नहीं है, है संग-मान तजता समता धनी है।
है साम्यदृष्टि रखता सब प्राणियों में, ओ साधु धन्य, रमता नहिं गारवों में॥११॥

346. A saint lacks mine ness (mamatva); he is without egotism (niragaikari),-is unattached (Nissaiga) Prideless (Gaurava ka tyagi/renouncer of pride) and equanimous towards all the one sensed to five sensed beings (of the universe).

३४७ लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।
समो निन्दा-पसंसासु, तहा माणा-वमाणओ ॥१२॥

जो एक से मरण जीवन को निहारें, निन्दा मिले यश मिले सम भाव धारें।
मानापमान, सुख-दुःख समान मानें, वे धन्य साधु, सम लाभ अलाभ जानें॥१२॥

347. He equally treats profit and loss, Happiness and unhappiness, birth and death , praise and condemnation, or respect and disrespect (and remains undisturbed in mind).

३४८ गारवेसु कसाएसु, दंड-सल्ल-भएसु य।
नियत्तो हास-सोगाओ, अनियाणो अबन्धणो ॥१३॥

आलस्य-हास्य तज शोक अशोक होते, ना शल्य गारव कषाय निकाय ढोते।
ना भीति बंधन-निदान-विधान होते, वे सादु वन्द्य हम को, मन मैल धोते॥१३॥

348. He is free from (nivratta/retired from) pride (Gaurava), passion (kasaya), punishment (Dank), anxiety (salya), fear (Bhaya), ridicule (hasya), and sorrow (soka). Further, he is without the cause of disease (Anidani) (of transmigration) and free of al ties (bondages/shaekles).

३४९ अणिस्सिओ इहं लोए, परलोए अणिस्सिओ।
वासी चन्दण-कप्पो य, असणे अणसणे तहा ॥१४॥

हो अंग राग अथवा छिय जाय अंग, भिक्षा मिलो, मत मिलो इक सार ढंग।
जो पारलौकिक न लौकिक चाह धारे, वे साधु ही बस! बसे उर में हमारे॥१४॥

349. He is unattached with the present life or with future life or lives (i.e. he is indifferent towards present as well as future trikals and tribulations). He always remains equanimous; gets neither delighted nor gloomy at times of availability or non availability of food and in case of his body being ointed with sandal or scratched (skinned out) by an adze.

३५० **अप्पसत्थेहिं दारेहिं, सव्वओ पिहियासवे।**
अज्झप्प-ज्झाण-जोगेहिं, पसत्थ-दम-सासणे ॥१५॥

हैं हेयभूत विधि आस्रव रोक देते, आदेय भूत वर संवर लाभ लेते।
अध्यात्म ध्यान यम योग प्रयोग द्वारा, हैं सादु लीन निज में तज भोग सारा॥१५॥

350. Such a saint completely controls the inflow of karmas, coming in soul through various inlets and makes himself absorbed (engrossed devoid) in the rule of restraint (sainymay-sasan), that has been enlogised by (various) spiritualistic abstractions (Dhyan-yogas).

३५१ **खुह पिवास दुस्सेज्जं, सीउण्हं अरई भयं।**
अहियासे अव्वहिओ, देहे दुक्खं महाफलं ॥१६॥

जीतो सहो दृगसमेत परीषहों को, शीतोष्ण भीति रति प्यास क्षुधादिकोंको।
स्वादिष्ट इष्ट फल कायिक कष्ट देता, ऐसा 'जिनेश' कहते शिव-पन्थ-नेता॥१६॥

351. Without being least disturbed one should quietly bear hunger, thirst, rough bed (Duh-sayya/uneven and rough land), cold, heat, ennui (Arati/languor/dissatisfaction), fear (Bhaya) etc. because forbearance of (such) physical pains in this manner is most fruitful (Mahaphaladayi/extremely beneficial).

३५२ **अहो निच्चं तवोकम्मं, सव्वबुद्धेहिं वण्णियं।**
जाय लज्जासमा वित्ती, एगभत्तं च भोयणं॥१७॥

शास्त्रानुसार तब ही तप साधना हो, ना बार-बार दिन में इक बार खाओ।
ऐसा ऋशीष उपदेश सभी सुनाते, जो भी चले तदनुसार स्वधाम जाते॥१७॥

352. Oh! all wise men have recommended such austerities inclusive of such austerities and religious ceremonies with fixed aims (anusthana), which include one meal per day in day time and controlled way of life (saniyamannkula-vartana/subsistence in accordance with restraint).

३५३ **किं काहदि वणवासो, काय-किलेसो विचित्त-उववासो।**
अज्झयण-मोण-पहुदी, समदा-रहियस्स समणस्स ॥१८॥

मासोपवास करना वनवास जाना, आतापनादि तपना तन को सुखाना।
सिद्धान्त का मनन,मौन सदा निभाना,ये व्यर्थ हैं श्रमण के बिन साम्य बाना॥१८॥

353. Living in forest, mortification of the body (Kaya-klesa), unique fasting (vicitra-upavasa), study and observance of silence by an unequanimous (samata-rahita) saint are all infructuous.

३५४ **बुद्धे परिनिव्वुडे चरे, गाम गए नगरे व संजए।**
सन्तिमग्गं च बहए, समयं गोयम! मा पमायए॥१९॥

विज्ञान पा प्रथम, संयत भाव धारो, रे! ग्राम में नगर में कर दो विहारो।
संवेग शान्तिपथ पै गममान होवो, होके प्रमत्त मत गौतम!काल खोओ॥१९॥

354. Move about the town and/or village, in sobriety, after being awake (Prabhuddha/conscious/enlightened) and getting your Right conduct deluding karmas subsided (upasanta-moha). Extend the path of peace Oh Gautam ! don't be careless, even for a moment.

३५५ **न हु जिणे अज्ज दिस्सई, बहुमए दिस्सई मग्गदेसिए।**
संपइ नेयाउए पहे, समयं गोयम! मा पमायए॥२०॥

होगा नहीं जिन यहाँ , जिन धर्म आगे, मिथ्यात्व का जव प्रचार नितान्त जागे।
है ! भव्य गौतम! अतः अब धर्म पाया,धारो प्रमाद पल भी न,जिनेश गाया ॥२०॥

355. In future, people would say (comment)-"Today `Jina' is not visible and the guides (Marg-darshak) are not unanimous. At Present (unlike that) thou art conversant with just (and correct) path.
Hence oh Gautam ! do not be careless even for a moment (i.e. take time by the forelock).

३५६ वेसो वि अप्पमाणी, असंजमपएसु वट्टमाणस्स।
किं परियत्तियवेसं, विसं न मारेइ खज्जंतं ॥२१॥

हो बाह्य भेष न कदापि प्रमाण भाई! देता जभी तक असंयत में दिखाई।
रे ! वेष को बदल के विष जो कि पीता,पाता नहीं मरण क्या-रह जाय जीता? ॥२१॥

356. (In the path of Restraint) Dress (apparel/costume) is no evidence; as it is used by (found in) the unrestrain persons also (fictitious persons as well). Does poison nor kill a person, who is disguised (i.e. who has assumed a form, other than his own).

३५७ पच्चयत्थं च लोगस्स, नाणाविह-विगप्पणं।
जत्तत्थं गहणत्थं च, लोगो लिंगप्पओयणं ॥२२॥

हो लोक को विदित ये जिन साधु आये, शास्त्रादि साधन सुभेष अतः बनाये।
औ ब्राह्य संयम न, लिंग बिना चलेगा, जो अंतरंग यम सादन भी बनेगा ॥२२॥

357. (In spite of that) many costumes and things likewise have been devised for the common belief (Lok-pratiti) of people in general. The symbol (linga/token) particular mark or sign) serves the purpose of assisting in the accomplishment of the journey of restraint (Saniyam yatra); and it incessantly reminds one of the fact that he is a saint.

३५८ पासंडी-लिगाणि व, गिहि-लिंगाणि व बहुप्पयाराणि।
घित्तुं वदंति मूढा, लिंग-मिणं मोक्ख-मग्गो त्ति ॥२३॥

ये दीखते जगत में मुनि साधुओं के, हैं भेष, नैक-विध भी गृहवासियों के।
वे अज्ञ मूढ़ जिन को जब धारते हैं, है मोक्ष मार्ग यह यों बस मानते हैं ॥२३॥

358. In the world, various symbols (marks/tokens/linga) have been assigned to various types of saints and house holders. Those who adopt them and assert that such symbols cause salvation are great fools (murha-jana/idiots).

३५९ पुल्लेव मुट्ठी जह से असारे, अयन्तिए कूडकहावणे वा।
राढामणी वेरुलियप्पगासे, अमहग्घए होई य जाणएसु ॥२४॥

निस्सार मुष्टि वह अन्दर पोल वाली। बेकार नोट यह है नकली निराली।
हो काँच भी चमकदार सुरत्न जैसा, ज्यों जोहरी परखता नहिं मूल्य पैसा।
पूर्वोक्त द्रव्य जिस भांति मुधा दिखाते, है मात्र भेष उस भाँति सुधी बताते ॥२४॥

359. The wise men do not consider that, at all valuable which is useless like a hollow fist which is useless like a hollow fist (closed palm with cavity/poli muthi); which is unauthenticated like a fake/fictitious coin; and which is a more a piece of glass though it glitters (shines) like a gem of baryl (Vaidurya).

३६० भावो हि पढम-लिंगं, ण दव्व-लिंग च जाण परमत्थं।
भावो कारण-भूदो, गुण-दोसाणं जिणा बिंति ॥२५॥

है भाव लिङ्ग वर मुख्य अतः सुहाता, है द्रव्य लिङ्ग परमार्थ नहीं कहाता।
है भाव ही नियम से गुण दोष हेतु, होता भवोदधि वही भव-सिन्धु-सेतु ॥२५॥

360. (In reality) the main symbol/emblem of a saint consists of his thought natures (Bhava/thought-actions). The subtle truth (parmartha/the best end) does not consist of external marks or symbols/emblems (pravya-

linga/external observances); because Shri Jina dev affirms thought natures (Bhava) to the root cause of merits and demerits (Guna-dosa).

३६१ भाव-विसुद्धि-णिमित्तं, बाहिर-गंथस्स कीरए चाओ।
बाहिर-चाओ विहलो, अब्भंतर-गंथ-जुत्तस्स ॥२६॥

ये "भाव शुद्धतम हो" जब लक्ष्य होता, है बाह्य संग तजना फलरूप होता।
जो भीतरी कलुषता यदि ना हटाता,जो बाह्य त्याग उसका वह व्यर्थ जाता॥२६॥

361. External possessions are abandoned (renounced) for the purification of thought natures. The external renunciation of a person, who still nourishes passion for possession (in his mind) is fruitless (Nisphala).

३६२ परिणामम्मि असुद्धे, गंथे मुंचेइ बाहिरे य जई।
बाहिर-गंथ-च्चाओ,.भाव-विहूणस्स किं कुणइ ॥२७॥

जो अच्छ स्वच्छ परिणाम बना न पाते, पै बाहरी सब परिग्रह को हटाते।
वे भाव-शून्य करनी करते कराते, लेते न लाभ शिव का, दुख ही उठाते॥२७॥

362. What is the good of the renunciation of external possessions by a person, who lacks the self knowledge (atma-bhavana se sunya) and whose thought actions are impure.

३६३ देहादि-संग-रहिओ, माण-कसाएहिं सयल-परिचत्तो।
अप्पा-अप्पम्मि रओ स भाव-लिंगी हवे साहू॥२८॥

कषायिकी परिणती जिसने घटा दी, औ निन्द्य जान तन की ममता मिटा दी।
शुद्धात्म में निरत है तज संग संगी, हो पूज्य सादु वह पावन भाव-लिंगी॥२८॥

363. That saint alone is Bhava-lingi (i.e. saint both in mind and in external observances), who is united with his self; who is free of all passions like pride; and who is devoid of the (feelings of) mine-ness as regards his body etc.

(25) व्रतसूत्र

३६४ अहिंसा सच्चं च अतेणं च, तत्तो य बंभं अपरिग्गह च।
पडिवज्जिया पंच महव्वयाणि, चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विउ॥१॥

हिंसादि पंच अघ हैं तज दो अघों को, पालो सभी परम पंच महाव्रतों को।
पश्चात जिनोदित पुनीत विरागता का,आस्वाद लो,कर अभाव विभावता का॥१॥

364. The learned saint should follow such conduct, as preached by Shri Jina by adopting five full vows (Maha-vrata) of non-violency, truth, non stealing, celibacy and non possession.

३६५ णिस्सल्लस्सेव पुणो, महव्वदाइं हवंति सव्वाइं।
वदमुवहम्मदि तीहिं दु, णिदाणमिच्छत्तमायाहिं॥२॥

वे ही महाव्रत नितान्त सुसाधु धारें, नि: शल्य हो विचरते त्रय-शल्य टारें।
मिथ्या निदान व्रतघातक शल्य माया, ऐसा जिनेश उपदेश हमें सुनाया॥२॥

365. All those full vows can be observed by the unblemished vower (Nihsalya-vrati); as the vows are destroyed by three thorns/blemishes named :-
1. Desire for future sense pleasures;
2. Wrong faith; and
3. Deceit.

३६६ अगिणअ जो मुक्खसुहं, कुणइ निआणं असारसुहहेउं।
सो कायमणिकएणठं, वेरुलियमणिं पणासेइ॥३॥

है मोक्ष की यदि व्रती करता उपेक्षा, चारित्र ले विषय की रखता अपेक्षा।
तो मूढ़ भूल मणि जो अनमोल देता, धिक्कार काँच मणि का वह मोल लेता॥३॥

366. The vower (vrati), who ignores (or undermines) the attainment of salvation (in this life) for the sake of achieving worthless sensual pleasures in next life (or lives) looses, as if it were, the gem of lapis lazuli for a piece of glass.

३६७ कुल-जोणि-जीव-मग्गण-ठाणाइसु जाणिऊण जीवाणं।
तस्सा-रंभ-णियत्तण-परिणामो होइ पढम-वदं ॥४॥

जो जीव थान, कुल मार्गण योनियों में, पा जीवबोध, करुणा रखता सबों में।
आरम्भ त्याग उनकी करता न हिंसा,हो साधु का विमल भाव वही 'अहिंसा' ॥४॥

367. The first vow of non violence consists of thought natures of (internal) retirement from the activities, concerned with the living beings, after having been acquainted with their families, and Margana sthans etc.

३६८ सव्वेसि-मासमाणं हिदयं गब्भो व सव्वसत्थाणं।
सव्वेसिं वदगुणाणं, पिंडो सारो अहिंसा हु ॥५॥

निष्कर्ष है परम पावन आगमों का, भाई! उदार उर धार्मिक आश्रमों का।
सारे व्रतों सदन है, सब सद्गुणों का, आदेय है विमल जीवन साधुओं का।
है विश्वसार जयवन्त रहे अहिंसा, होती रहे सतत ही उसकी प्रशंसा ॥५॥

368. Non violence is the heart of all ashramas mystery of all the scriptures and the quint essence/gist essence of all vows and attributes.

३६९ अप्पणट्ठा परट्ठा वा, कोहा वा जई वा भया।
हिंसगं न मुसं बूया, नो वि अन्नं वयावए ॥६॥

ना क्रोध भीतिवश स्वार्थ तराजु तोलो, लेओ न मोल अघ हिंसक बोल बोलो।
होगा द्वितीय व्रत 'सत्य' वही तुम्हारा, आनन्द का सदन जीवन का सहारा ॥६॥

369. One should neither speak nor cause others speak the violent untruth (Himsarmak-Asatyua/untruth based on violence) either for the sake of him self or for the sake of other or fear etc. This is the second vow of truth.

३७० गामे वा णयरे वा-रण्णे वा पेच्छिऊण परमत्थं।
जो मुयादि गहण-भावं, तिदिय-वदै होदि तस्सेव ॥७॥

जो भी पदार्थ परकीय उन्हें न लेते, वे साधु देखकर भी बस छोड़ देते।
है स्तेय भाव तक भी मन में न लाते, 'अस्तेय' है व्रत यही जिन यों बताते ॥७॥

370. The saint who renounces the thought action (Bhav) of taking or accepting the property (goods of others found in village or town or forest, adopts the third vow of non-stealing.

३७१ चित्तमंत-मचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं।
दंत-सोहण-मेत्तं पि, ओग्गहंसि अजाइया ॥८॥

ये द्रव्य चेतन अचेतन जो दिखाते, साधू न भूलकर भी उनको उठाते।
ना दाँत साफ करने तक सींक लेते, अत्यल्प भी बिन दिए कुछ भी न लेते ॥८॥

371. The saint does not take (or accept) any things-whether it be animate or unanimate and large or small -without that having been given (to the saint) by its owner. He does not take even a tooth pick, in the like manner.

३७२ अइभूमिं न गच्छेज्जा, गोयरग्गगओ मुणी।
कुलस्स भूमिं जाणिता, मियं भूमिं परक्कमे ॥९॥

भिक्षार्थ भिक्षु जब जाँय, वहाँ न जाँय, जो स्थान वर्जित रहा अघ हो न पाँय।
वे जाँय जान कुल की मित भूमि लौं ही, 'अस्तेय' धर्म परिपालन श्रेष्ठ सो ही ॥९॥

372. The saint, who goes for begging alms (food), should not enter into the prohibited area; and in case the area concerned belongs to his family, he should go in a limited part thereof, only.

३७३ मूल-मेय-महम्मस्स, महा-दोस-समुस्सयं।
तम्हा मेहुण-संसग्गिं, निग्गंथा वज्जयंति णं ॥१०॥

अब्रह्म सेवन अवश्य अधर्म मूल, है दोष-धाम दुख दे जिस भाँति शूल।
निर्ग्रन्थ वे इसलिए सब ग्रन्थ त्यागी, सेवे न मैथुन कभी मुनि वीतरागी ॥१०॥

373. Sexual contact (maithun-sansarg) is the root of all

(irreligious-conduct/wrongs). It is the sumto
(samuga/collection) of all the vices (dosa). Hence, t
possessionless saints, who take the vow of celibacy, total
renounce sexual indulgence (maithun sevan/unchastity

३७४ मादु-सुदा-भगिणीव य, दट्ठूणित्थि-त्तियं च पडिरूवं।
इत्थि-कहादि-णियत्ति, तिलोय-पुज्जं हवे बंभं॥११॥

माता सुता बहन सी लखना स्त्रियों को, नारी-कथा न करना भजना गुणों क
'श्री ब्रह्मचर्य व्रत' है यह मार हन्ता, है पूज्य वन्द्य जग में सुख दे अनन्ता॥११

374. The fourth vow of celibacy (Brahmacarya) consists
treating the old, young and adolescent (juvenete) wom
as mothers, sisters and daughters; and keeping one s
away form the talks about women (stri-katha). This vo
of celibacy commands respect (is worshipped) throu
all the three universes.

३७५ सव्वेसिं गंथाणं, चागो णिरवेक्ख-भावाणा-पुव्वं।
पंचम-वद-मिदि भणिदं, चारित्त-भरं वहंतस्स॥१२॥

जो अन्तरंग बहिरंग निसंग होता, भोगाभिलाष बिन चारित भार ढोत
है पाँचवाँ व्रत 'परिग्रह त्याग' पाता,पाता स्वकीय सुख,तू दुख क्यों उठाता॥१२

375. The 5th full vow of possessionlesness (Aparigrah
consists of the renunciation of all possessions external
well as internal-by a saint who is (strictly) following t
prescribed) conduct in an indifferent manner i.e. witho
expecting any gain there from.

३७६ किं किंचण त्ति तक्कं, अपुणब्भव-कामिणोध देहे वि।
संग त्ति जिणवरिंदा, णिप्पडिकम्मत्त-मुद्दिट्ठा॥१३॥

दुर्गन्धि अंग तक "संग" जिनेश गाया, यों देह से खुद उपेक्षित हो दिखाया
क्षेत्रादि बाह्या सब संग अतः विसारो, होके निरीह तन से तुम मार मारो॥१३

376. Lord Arihanta deva has advised to, those who want to attain salvation, to ignore body, by asserting "Body is also a possession" in view of this, there is no necessity of any further argument (in support of non possession).

३७७ अप्पडिकुट्ठं उवधिं, अपत्थ-णिज्जं असंजद-जणेहिं।
मुच्छादि-जणण-रहिदं, गेण्हदु समणो जदि वि अप्पं॥१४॥

जो माँगना नहिं पड़े गृहवासियों से, ना हो विमोह ममतादिक भी जिन्हों से।
ऐसे परिग्रह रखें उपयुक्त होवे, पै अल्प भी अनुपयुक्त न साधु ढोवें॥१४॥

377. (In spite of that) a saint can accept objects, which are indispensable (for his subsistence); which are not coveted (prarthaniya) by the intemperate (Asamyami/ unrestrained) persons and which do not generate (the sense of) ownership (or myness) etc. He should not accept the minutest possession, other than that (afore mentioned).

३७८ आहारेव विहारे, देसं कालं समं खमं उवधि।
जाणित्ता ते समणो, वट्टदि जदि अप्पलेवी सो॥१५॥

जो देह देश-श्रम-काल बलानुसार, आहार ले यदि यती करता विहार।
तो अल्प कर्म मल से वह लिप्त होता, औचित्य एक दिन है भव-मुक्त होता॥१५॥

378. That saint is "Alpa lepa" (bound with karms in negligible manner), who takes (proper) care regarding his fooding and strolling (Ahar-bihara) keeping in view the country (area), times, labour his own capacity and his title (upadhi).

३७९ न सो परिग्गहो वुत्तो, नाय-पुत्तेण ताइणश।
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो, इइ वुत्तं महेसिणा॥१६॥

जो बाह्या में कुछ पदार्थ यहाँ दिखाते, वे वस्तुतः नहिं परिग्रह हैं कहाते।
मूर्छा परिग्रह परन्तु यथार्थ में है, श्री वीर का सदुपदेश मिला हमें है॥१६॥

379. Lord Mahavir the son of Jnata-has not defined possession as (merely) consisting of material objects,. that Maharshi (great sage) has defined possession as worldly attachment (i.e. intoxication in the living and non-living objects of the world, through Pramatta-yoga).

३८० **सन्निहिं च न कुव्वेज्जा, लेवमायाए संजए।**
पक्खी पत्तं समादाय, निरवेक्खो परिव्वए॥१७॥

ना संग संकलन संयत हो करो रे! शास्त्रादि साधन सुचारु सदा धरो रे।
ज्यों संग ही विहग ना रखते अपेक्षा, त्यों संयमी समरसी, सबकी उपेक्षा॥१७॥

380. A saint should not collect (or store) things at all. He should (continue to) move with his instruments of Restraint (samyamo-pakarna) like a bird, which remains unconcerned with any store, and (continue to) fly in the sky.

३८१ **संथार-सेज्जासण-भत्तपाणे, अप्पिच्छया अइलाभे विसंते।**
जो एव-मप्पाण-भितोसएज्जा, संतोसपान्न-रए स पुज्जो।।१८॥

आहार-पान-शयनादिक खूब पाते, पै अल्प में सकल कार्य सदा चलाते।
सन्तोष-कोष, गतरोष अदोष साधु, वे धन्य धन्यतर हैं शिर मैं नवा दूँ॥१८॥

381. A saint is specially found of contentment. He desires little and gets satisfies with very little in respect of samstarak bed (sayya), seat (asan), and food (Ahar) not with standing their abundant supply (plentiful availability).

३८२ **अत्थंगयम्मि आइच्चे, पुरत्था अ अणुग्गए।**
आहारमाइयं सव्वं, मणसा वि ण पत्थए॥१९॥

ना स्वप्न में न मन में न किसी दशा में, लेते नहीं अशन वे मुनि हैं निशा में।
जिह्वा-जयी जितकषाय जिताक्ष जोगी, कैसे निशाचर बनें, बनते न भोगी॥१९॥

382. An equanimous saint who is possessionless should not even think of taking any food after sunset and before sun rise.

३८३ **संतिमे सुहुमा पाणा, तसा अदुव थावरा।**
जाइं राओ अपासंतो, कहमेसणियं चरे? ॥२०॥

आकीर्ण पूर्ण धरती जब थावरों से, सूक्ष्मातिसूक्ष्म जग जंगम जंतुओं से।
वे रात्रि में न दिखते युग लोचनों से, कैसे बने अशन शोधन साधुओं से? ॥२०॥

383. The earth is always infested with (occupied by) such fine microbes (sukshma Jina) one sensed and more than one sensed as are not visible in the darkness of night. Under such circumstances, how can any saint properly (fully) examine, the purity of food ?

(26) समिति-गुप्तिसूत्र

३८४ **इरिया-भासे-सणा-दाणे, उच्चारे समिई इय।**
मणगुत्ती वयगुत्ती, कायगुत्ती य' अट्ठमा॥१॥

'ईर्या' रही समिति आद्य द्वितीय 'भाषा', तीजी 'गवेषण' धरे नश जाय आशा।
'आदान निक्षिपण'-पुण्यनिधान चौथा, व्युत्सर्ग' पंचम रही सुन भव्य श्रोता।
कायादि भेद वश भी त्रय गुप्तियाँ हैं, ये गुप्तियाँ समितियाँ जननी-समा हैं॥१॥

384. Proper care in walking, proper care in speaking, proper care in eating proper care in lifting and laying and proper control over mind proper control over speech (vacan-Gupti) and proper control over body are three preservations (disciplines).

३८५ **एदाओ अट्ठ पवयणमादाओ णाणदंसणचरित्तं।**
रक्खंति सदा मुणिणो, मादा पुत्तं व पयदाओ॥२॥

माता स्वकीय सुत की जिस भाँति रक्षा, कर्त्तव्य मान करती, बन पूर्ण दक्षा,
गुप्त्यादि अष्ट जननी उस भाँति सारी, रक्षा सुरत्नत्रय की करती हमारी॥२॥

385. There are eight mothers of the path of liberation. Just as a careful mother protects his son; similarly these eight mothers cautiously observed (adopted) by a saint, protect his right faith, Right knowledge and Right conduct.

३८६ **एयाओ पंच समिई ओ, चरणस्स य पवत्तणे।**
गुत्ती नियत्तणे वुत्ता, असुभत्थेसु सव्वसो ॥३॥

निर्दोष से चरित पालन पोषनार्थ, उल्लेखिता समितियाँ गुरु ने बता
ये गुप्तियाँ इसलिये गुरु ने बताईं, काषायिकी परिणती मिट जाय भाई! ॥३॥

386. These five carefulness are (meant) for the enforcement o
(the rules of) conduct. The three preservation/discipline
are (meant) for desisting one from all malevolent sense
pleasures.

३८७ **जह गुत्तस्सिरियाई, न होंति दोसा तहेव समियस्स।**
गुत्तीट्ठिय प्पमायं, रुंभइ समिई सचेट्ठस्स ॥४॥

निर्दोष गुप्तित्रय पालक साधु जैसे, निर्दोष हो समितिपालक ठीक वैसे
वे तो अगुप्ति भव-मानस-मैल धोते, ये जागते समिति-जात प्रमाद खोते ॥४॥

387. Just as a saint who observed preservations/disciplines
not guilty of improper movements (Annchi
Gamanagama); similarly a saint who observes car
fullness (saint) is also not guilty there of. The reaso
being : A saint, well established in the preservatio
relating to mind etc. prevents the carelessness arising ou
of non-observance of preservations, that is the root caus
of all vices. When the same (saint) is established i
carefulness (then he prevents the carelessness, that occu
in course of transaction.

३८८ **मरदु व जियदु व जीवो, अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा।**
पयदस्स णत्थि बंधो, हिंसामेत्तेण समिदस्स ॥५॥

जी जाय जीव अथवा मर जाय हंसा, ना पालना समितियाँ बन जाय हिंसा
होती रहे वह भले कुछ बाह्य हिंसा, तू पालता समितियाँ पलती अहिंसा ॥५॥

388. The careless person is guilty of violence irrespective of
the fact, whether some living being dies or not does dies.

(On the contrary), he who observes carefulness, is not bound with (such karmas, inspite of the occurrence of external violence.

३८९-३९० **आहच्च हिंसा समितस्स जा तू, सा दव्वतो होति ण भावतो उ**
भावेण हिंसा तु असंजतस्सा, जे वा वि सत्तेण सदा वधेति ॥६॥
संपत्ति तस्सेव जदा भविज्जा, सा दव्वहिंसा खलु भावतो य।
अज्झत्थसुद्धस्स जदा ण होज्जा, वधेण जोगो दुहतो वऽहिंसा ॥७॥

जो पालते समितियाँ, तब द्रव्य-हिंसा, होती रहे, पर कदापि न भाव-हिंसा।
होती असंयमतया वह भाव हिंसा, हो जीव का न वध, पै बन जाय हिंसा ॥६॥
हिंसा दिधा सतत वे करते कराते, जो मत्त संयत असंयत हैं कहाते।
पै अप्रमत्त मुनि धार द्विधा अहिंसा, होते गुणाकर, करुँ उनकी प्रशंसा ॥७॥

389-390. (Reason being) the violence, which is casually committed by a saint who observes (is established in) carefulness amounts to objective violence (Dravya-Himsa). Subjective violence is not committed by the unrestrained (Asainyami/careless) saint. He is guilty of killing of (or injuring) such living beings, whom he (actually) does not kill (or injure).
Just as a careless man whether he be restrained or unrestrained is, in case of killing or (or injuring) any living being by him is (held) guilty of objective and subjective violence both; similarly, a saint who observes (is established in) carefulness and is full of purity of mind, is not (held) guilty of objective and subjective violence as he does not (intentionally/subjectively) kill (or injure).

३९१-३९२ **उच्चालियम्हि-पाए, इरिया-समिदस्स णिग्गमत्थाए।**
आबाधेज्ज कुहिगहँ मरिज्ज तं जोगमासेज्ज ॥८॥
ण हि तस्स तण्णिमित्तो बंधो सुहुमो य देसिदो समये।
मुच्छा परिग्गहो च्चिह, अज्झप्प पमाणदो दिट्ठो ॥९॥

आता यती समिति से उठ बैठ जाता, भाई तदा यदि मनो मर जीव जात
साधू तथापि नहिं है अघकर्म पाता, दोषी न हिंसक, 'अहिंसक' ही कहाता॥८
संमोह को तुम परिग्रह नित्य मानो, हिंसा प्रमाद भर को सहसा पिछान
अध्यात्म आगम अहो इस भांति गाता, भव्यात्म को सतत शान्ति सुधा पिलाता॥९

391-392. According to Agama (Scripture) if any microbe (minu
living being) happens to be crushed (and killed thereb
by the foot of saint, who is properly observing th
carefulness of walking, the concerned saint is not at
subjected to karmic bondage. Just as Adhyatma-Shast
defines possession as attachment or infatoatic
(Murchha) (in the living or non living objects of th
world); similarly it defines violence as carelessness.

३९३ पउमणि-पतं व जहा उदयेण ण लिप्पदि सिणेह-गुण-जुत्तं
तह समिदीहिं ण लिप्पई साधू काएसु इरियंतो॥१०॥

ज्यों पद्मिनी वह सचिक्कण पत्रवाली, हो नीर में न सड़ती रहती निरालि
त्यों साधु भी समितियाँ जब पालता है, ना पाप-लिप्त बनता सुख साधता है॥१०

393. Just as a lotus leaf which is oily is not attached
associated with/absorbed in/lipta) with water; similarl
a saint, who walks amongst living beings properl
observing the carefulness of walking, is not attached wit
(associated with/bound with) karmas.

३९४ जयणा उ धम्मजणणी, जयणा धम्मस्स पालणी चेव।
तव्वुड्ढीकरी जयणा, एगंतसुहावहा जयणा॥११॥

आचार हो समितिपूर्वक दुःख हर्त्ता, है धर्म-वर्धक तथा सुख-शान्ति-कर्त्ता।
है धर्म का जनक चालक भी वही है, धारो उसे मुकति की मिलती मही है॥११॥

394. Carefulness is the mother of conduct (Bharma/religion);
carefulness is the father (palanhar/preservator) of
conduct; carefulness is, pleasing in itself.

३९५ जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं न बंधई॥१२

आता यती विचरता, उठ बैठ जाता, हो सावधान तन को निशि में सुलाता।
औ, बोलता, अशन एषण साथ पाता, तो पाप-कर्म उसके नहि पास आता॥१२॥

395. A saint is not guilty of sin in case he walk with (proper)
care; and speaks with (proper) care.

३९६ फासुय-मग्गेण दिवा, जुगंतर-प्पेहिणा सकज्जेण।
जंतूणि परिहरंते-णिरिया-समिदी हवे गमणं॥१३॥

हो मार्ग प्रासुक, न जीव विराधना हो, जो चार हाथ पथ पूर्ण निहारना हो।
ले स्वीय कार्य कुछ पै दिन में चलोगे, 'ईर्यामयी समिति' को तब पा सकोगे॥१३॥

396. Irya-samiti (carefulness of walking) consists of walking,
purposively, by day on a dry path (Prasuka-marg/path
on which movements have started) looking forward (at
least) four-hands (six feet) long strip of land and avoiding
the infliction of all sorts of injuries to microbes etc.

३९७ इन्दियत्थे विवज्जित्ता, सज्झायं चेव पंचहा।
तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे, उवउत्ते इरियं रिए॥१४॥

संसार के विषय में मन ना लगाना, स्वाध्याय पंच विध न करना कराना।
एकाग्र चित्त करके चलना जभी हो, ईर्या सही समिति है पलती तभी ओ॥१४॥

397. A saint should walk, paying full attention to and giving
utmost importance to walking. During that period he should
give up all the five kinds of studies and sense subjects.

३९८ तहेवुच्चावया पाणा, भत्ताट्ठाए समागया।
त-उज्जुयं न गच्छेज्जा, जयमेव परक्कमे॥१५॥

हों जा रहे पशु यदा जल भोज पाने, जाओ न सन्निकट भी उनके सयाने।
हे साधु! ताकि तुम से भय वे न पावें, जो यत्र तत्र भय से नहिं भाग जावें॥१५॥

398. While walking, proper care should be taken so as to avoid confrontation with the animals, birds and various other living beings which su-motto, gather on the way, in search of food- in order to save them from being fear struck (terror-struck).

३९९ न लवेज्ज पुट्ठो सावज्जं, न निरट्ठं न मम्मयं।
अप्पणट्ठा परट्ठा वा, उभयस्सन्तरेण वा॥१६॥

आत्मार्थ या निजपरार्थ परार्थ साधु, निस्सार भाषण करे न, स्वधर्म स्वादु।
बोले नहीं वचन हिंसक मर्म-भेदी, 'भाषामयी समिति' पालक आत्म-वेदी॥१६॥

399. A saint, who observes carefulness of speaking (Bhasa-samiti) should in case of being enjured neither speak sinful words (papa-vachan), nor meaning less words, not heart rending (mare-bhedi/poignant/stenging) words either for himself or for others or for both.

४०० तहेव फरुसा भासा, गुरु भूओ-वघाइणी।
सच्चा वि सा न वत्तव्वा, जओ पावस्स आगमो॥१७॥

बोलो न कर्ण कटु निद्य कठोर भाषा, पावे न ताकि जग जीव कदापि त्रासा।
हो पाप-बन्ध वह सत्य कभी न बोलो, घोलो सुधा न विष में, निज नेत्र खोलो॥१७॥

400. (In addition) he should not use language, which is harsh hurtful and injurious to living beings. He should neither speak such truthful words which are sinful (and cause bad/Inauspicious Karmic-bondage).

४०१ तहेव काणं काणे त्ति पंडगं पंडगे त्ति वा।
वाहियं वा वि रोगि त्ति, तेणं चोरे त्ति नो वए॥१८॥

हो एक नेत्र नर को कहना न काना, ओ चोर को कुटिल चोर नहीं बताना।
या रुग्ण को तुम न रुग्ण कभी कहो रे! ना! ना! नपुंसक नपुंसक को कहो रे॥१८॥

401. Similarly, one should not address (call) one eyed man as

one eyed; impotent as impotent; sick (diseased) as sick and thief as thief.

४०२ पेसुण्ण-हास-कक्कस-पर-णिंदा-प्पप्पसंस विकहादी।
वज्जिता स-परहियं, भासा-समिदी हवे कहणं॥१९॥

साधू करे न परनिंदन आत्म-शंसा, बोले न हास्य, कटु-कर्कश-पूर्ण भाषा।
स्वामी! करे न विकथा, मितमिष्ट बोले, 'भाषामयी समिति' में नित ले हिलोरे॥१९॥

402. The carefulness of speech consists of speaking words, that are beneficial to both to the speaker as well as to him whom they are addressed. He who observes this carefulness should give up back biting (slandering), ridiculing speaking harsh words (Karkasa-vacan), condemnation of others, self praise and (all) false Narratives.

४०३ दिट्ठं मियं असंदिद्धं, पडिपुन्न वियं जियं।
अयंपिरम-णुव्विवग्गं, भासं निसिर अत्तवं॥२०॥

हो स्पष्ट, हो विशद, संशय नाशिनी हो, हो श्रावक भी सहज हो सुख-कारिणी हो।
माधुर्य-पूर्ण मित मार्दव-सार्थ-भाषा, बोले महामुनि, मिले जिससे प्रकाशा॥२०॥

403. A spiritual saint should use language, that contains (tells about) eye witnessed incidents; that is precise (brief), undoubtful, accurate regards vowels and consonants, expressive temperate Udvega-rahit/unagitated) and natural (Sahaj/which after being spoken appears as if it were unspoken).

४०४ दुल्लहा उ मुहादाई, मुहाजीवो वि दुल्लहा।
मुहादाई मुहाजीवो, दो वि गच्छंति सोग्गइं॥२१॥

जो चाहता न फल दुर्लभ भव्य दाता, साधु अयाचक यहाँ बिरला दिखाता।
दोनों नितान्त द्रुत ही निज धाम जाते, विश्रान्त हो सहज में सुख शान्ति पाते॥२१॥

404. Those who donate without expecting any return there from (Mudha dayi) and those who subsist upon such

alms both are rare, both attain better grade of life even salvation either traditionally (Parampara se) or actually.

४०५ **उग्गम-उप्पादण-एसणेहिं पिंड च उवधि सज्जं च।**
सोधंतस्स य मुणिणो, परिसुज्झइ एसणा-समिदी॥२२॥

उत्पादना-अशन-उद्गम दोष हीन, आवास अन्न शयनादिक ले, स्वलीन।
वे एषणा समिति साधक साधु प्यारे, हो कोटिशः नमन ये उनको हमारे॥२२॥

405. The carefulness of food (E'sana-samiti) of a saint consists of accepting food, free of all the defects, arising out of its preparation (Udgamadosa), production (utpadan) and consumption (Asan/eating); and the purification of the material objects of his use bed, place of residence etc.

४०६ **ण बलाउ-साउअट्ठं, ण सरीरस्सु-वचयट्ठ तेजट्ठं।**
णाणट्ठ-संजमट्ठं, झाणट्ठं चेव भुंजेज्जा॥२३॥

आस्वाद प्राप्त करने बल कान्ति पाने, लेते नहीं अशन जीवन को बढ़ाने।
पै साधु ध्यान तप संयम बोध पाने, लेते अतः अशन अल्प अये! सयाने॥२३॥

406. The saints do not take food either to increase their strength or extend their age or for the sake of taste (Similarly) They do not take food with a view to develop (assists the growth of) their bodies (upachaya) or add to the luster and magnificence (teja) thereof.

४०७-४०८ **जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियई रसं।**
न य पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं॥२४॥
एमेए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो।
विहंगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणे रया॥२५॥

गाना सुना गुण गुणा गण षट् पदों का, पीता पराग रस फूल-फलों दलों का।
देता परन्तु उनको न कदापि पीड़ा, होता सुतृप्त, करता दिन-रैन क्रीड़ा॥२४॥
दाता यथा-विधि यथाबल दान देते, देते बिना दुख उन्हें मुनि दान लेते।
यों साधु भी भ्रमर से मृदुता निभाते, वे 'एषणा समिति' पालक हैं कहाते॥२५॥

407-408. Just as a large black bee (bhramar) (Collect and) take Juice of flowers without causing any annoyance/ inconvenience to them (flowers) and gets itself satisfied; similarly a saint who moves about in world free of (all) external and internal possessions do accept fresh and pure food (Prasuka-Ahar), as offered by the donors, without causing any annoyance/inconvenience to them (doners). The carefulness of food of a saint lie in such process.

४०९ **आहाकम्म-परिणओ, फासुयभोई वि बंधओ होई।**
सुद्धं गवेसमाणो, आहाकम्मे वि सो सुद्धो॥२६॥

उद्दिष्ट, प्रासुक भले, यदि अन्न लेते, वे साधु, दोष मल में व्रत फेंक देते।
उद्दिष्ट भोजन मिले, मुनि वीतरागी, शास्त्रानुसार यदि ले, नहि दोष भागी॥२६॥

409. A saint is guilty (of violating the carefulness of food) in case he accepts foods intentionally prepared for him or he takes food that is impure on account of the violence committed in course of its preparation and production. (But) he is not guilty (of violating the carefulness of food) in case he accepts food, that is pure and free of the defects of preparation and production after examining it properly (although some violence has been committed in connection with its preparation); because his thought actions (Bhav) have continued to remain pure.

४१० **चक्खुसा पडिलेहित्ता, पमज्जेज्ज जयं जई।**
आइए निक्खिवेज्जा वा, दुहओ वि समिए सया॥२७॥

जो देखभाल, कर मार्जन पिच्छिका से, शास्त्रादि वस्तु रखना, गहना दया से।
'आदान निक्षिपण' है समिति कहाती, पाले उसे सतत साधु, सुखी बनाती॥२७॥

410. A saint, who acts carefully should left and put down his both the instruments (i.e. Mayur-pich-chhika/brush made of peacock feathers and kamandalu/woodenjar)

after (proper scrutiny) seeing things from his own eyes and after properly cleaning them (instruments). The carefulness of lifting and putting (Adana-nikshepa samiti) consists of this process.

४११ एगंते अचित्ते दूरे, गूढे विसाल-मविरोहे।
उच्चारादिच्चाओ, पदिठावणिया हवे समिदी॥२८॥

एकान्त हो विजन विस्तृत ना विरोध, सम्यक् जहाँ बन सके त्रसजीव शोध।
ऐसा अचित्त थल पै मलमूत्र त्यागे, 'व्युत्सर्गरूप-समिती' गह साधु जागे॥२८॥

411. A saint should excrete at a place which is solitary; which is devoid of green (wet) vegetation and more than one sensed beings which is away from the habitat (e.g. village etc.); whose area is enough where none can see; and where none opposes (dissents). This is what carfulness of excretion emplies.

४१२ संरंभसमारंभे, आरंभे य तहेव य।
मणं पवत्तमाणं तु, नियत्तेज्ज जयं जई॥२९॥

आरम्भ में न समरम्भन में लगाना, संसार के विषय से मन को हटाना।
होती तभी 'मनसगुप्ति' सुमुक्ति-दात्री,ऐसा कहें क्षमणश्री-जिनशास्त्र-शास्त्री॥२९॥

412. A careful/vigilant (Yatna/sainpanna/Jagaruka) saint should with hold (forbid/prescribe) his mind from inclining towards the determination (sainrainbha) preparation (samnaranibha) and commencement (arainbha) to do things. He should save/defend his mind (in such manner).

४१३ संरंभसमारंभे, आरंभे य तहेव य।
वयं पवत्तमाणं तु, नियत्तेज्ज जयं जई॥३०॥

आरम्भ में न समरम्भन में लगाते, सावद्य से वचन योग यती हटाते।
होती तभी 'वचन-गुप्ति' सुखी बनाती,कैवल्य ज्योति झट से जब जगाती॥३०॥

413. A careful saint should with hold his speech from including towards the determination (sainrainbha) preparation (samaranibha) and commencement of doing things (Arambha). He should protect (defend) his speech (vacan) in the like manner.

४१४ संरंभसमारंभे, आरंभम्मि तहेव य।
कायं पवत्तमाणं तु, नियत्तेज्ज जयं जई॥३१॥

आरम्भ में न समरम्भन में लगाते, ना काय योग अघ कर्दम में फसाते।
ओ 'कायगुप्ति', जड़ कर्म विनाशती है, विज्ञान-पंकज-निकाय विकासती हैं॥३१॥

414. A careful (vigilant) saint should withhold his body from inclining towards the determination (sanirambha), preparation (samaranbha) and commencement (Aramibha) of doing things. he should protect it body in such manner.

४१५ खेत्तस्स वई णयरस्स, खाइया अहव होइ पायारो।
तह पावस्स णिरोहो, ताओ गुत्तीओ साहुस्स॥३२॥

प्राकार ज्यों नगर की करता सुरक्षा, किंवा सुवाड़ कृषि की करती सुरक्षा।
त्यों गुप्तियाँ परम पंच महाव्रतों की, रक्षा सदैव करतीं मुनि के गुणों की॥३२॥

415. The vice preventing (papa-nirodha) preservations/ disciplines of a saint protect (guard) his conduct in a manner in which the fencing of a farm protects that farm or in which the moat (Khai/trench/ditch/deke) of a town safe guards the town concerned.

४१६ एया पवयणमाया, जे सम्मं आयरे मुणी।
से खिप्पं सव्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पंडिए॥३३॥

जो गुप्तियाँ समितियाँ नित पालते हैं, सम्यक्तया स्वयं को ऋषि जानते हैं।
वे शीघ्र बोध बल दर्शन धारते हैं, संसार सागर किनार निहारते हैं॥३३॥

416. Such a wise saint, who proper observes these eight mothers of the path of liberation (pravacanamatas/ carefulness and preservations), soon gets liberated from his mundane existence.

(27) आवश्यक सूत्र

४१७ **एरिस-भेद-ब्भासे, मज्झत्थो होदि तेण चारित्तं।**
तं दढ-करण-णिमित्तं, पडिक्कमणादी यवक्खामि॥१॥

हो भेद ज्ञानमय भानु उदीयमान, मध्यस्थ भाव वश चारित हो प्रमाण।
ऐसे चरित्र गुण में पुनि पुष्टि लाने, होते 'प्रतिक्रमण' आदिक ये सयाने॥१॥

417. The impure soul gets imbibed with the thought nature of indifference (Madhyastha-bhava/ moderation/ tolerance) due to the exercise of discriminatory knowledge (Bheda-jnan), that results in (Right) conduct), self analysis and repentenence for faults (pratikarmana) etc. (i.e. six necessary duties) are being, hereby, discussed.

४१८ **परिचता परभावं, अप्पाणं झादि णिम्मल-सहावं।**
अप्पवसो सो होदि हु, तस्स दु कम्मं भणंति आवासं॥२॥

सद्ध्यान में श्रमण अन्तरधान होके, रागादिभाव पर हैं पर-भाव रोके।
वे ही निजातमवशी यति भव्य प्यारे, जाते 'अवश्यक' कहे उन कार्य सारे॥२॥

418. He, who meditates upon the nature of pure self (soul) and renounces the thought nature of non self is self controlled (Atma-vasi/selfwilled). His observances are designated as "Essential-duties".

४१९ **आवासं जइ इच्छसि, अप्प-सहावेसु कुणदि थिर-भावं।**
तेण दु सामण्ण-गुणं, संपुण्णं होदि जीवस्स॥३॥

भाई तुझे यदि अवश्यक पालना है, हो के समाहित स्व में मन मारना है।
हीराभ सामयिक में द्युति जाग जाती, सम्मोह तामस निशा झट भाग जाती॥३॥

419. If you desire to do the essential duties such as self analysis and Expiation (Pratikarmana), you shouldst establish/settle in the nature of self. In this manner, these soul would be replete with Equanimity (smayika). It is imbibed with Equality.

४२० **आवासएण हीणो, पब्भट्ठो होदि चरणदो समणो।**
पुव्वुत्त-कमेण पुणो, तम्हा आवासयं कुज्जा॥४॥

जो साधु हो न 'षडवश्यक' पालता है, चारित्र से पतित हो सहता व्यथा है।
आत्मानुभूति कब हो यह कामना है, आलस्य त्याग षडवश्यक पालना है॥४॥

420. A saint who does not (regularly and properly) perform his essential duties is defiles (Bhrastta/fallen/ corrupt/depraved). Hence, one should definitely perform them in aforementioned manner.

४२१ **पडिकमण-पहुडि-किरियं, कुव्वंतो णिच्छयस्स चारित्तं।**
तेण दु विराग-चरिए, समणो अब्भुट्ठिदो होदि॥५॥

सामायिकादि षडवश्यक साथ पालें, जो साधु निश्चय सुचारित पूर्ण प्यारे।
वे वीतरागमय शुद्धचरित्र धारी, पूजो उन्हें परम उन्नति हो तुम्हारी॥५॥

421. Such a saint, who discharges the essential duties such as self analysis and Expiation (that are parts of (the code of) Real conduct) ascends succeeds in climbing) on the conduct of the nonattached saints.

४२२ **वयण-मयं पडिकमणं, वयण-मयं पच्चखाण णियमं च।**
आलोयण वयणमयं, तं सव्वं जाण सज्झायं॥६॥

आलोचना नियम आदिक मूर्त्तमान, भाई प्रतिक्रमण शाब्दिक प्रत्यख्यान।
स्वाध्याय ये, चरित रूप गये न माने, चारित्र आन्तरिक आत्मिक है सयाने॥६॥

422. (But) the lunguistic (vacana-maya/wordy) self analysis and Expiation (pratikramana) linguistic (vacana manner) self meditation (Pratyakhyana); linguistic (vacan-maya) regulation; and linguistic (vacan-maya) confession of faults to the head of the order (alocana) all these are part of studies (swadhyaya); they do not constitute (Real).

४२३ **जदि सक्कदि कादुं जे, पडिकमणादिं करेज्ज झाणमयं।**
सत्ति-विहीणो जा जइ, सद्दहणं चेव कायव्वं ॥७॥

संवेगधारक यथोचित शक्ति वाले, ध्यानाभिभूत षडवश्यक साधु पाले
ऐसा नहीं यदि बने यह श्रेष्ठ होगा, श्रद्धान तो दृढ़ रखो, द्रुत मोक्ष होगा॥७॥

423. Hence, perform meditative self analysis and Expiation (Dhyana-maya pratikramana) etc. in case thou art so capable or it is so possible to be done. If thou art not so capable; for the time being thou shouldst repose faith in it. That is also good and creditable.

४२४ **सामाइयं चउवीसत्थओ वंदणयं।**
पडिक्कमणं काउस्सग्गो पच्चक्खाणं ॥८॥

सामायिकं जिनप की स्तुति वंदना हो, कायोत्सर्ग समयोचित साधना हो
सच्चा प्रतिक्रमण हो अघप्रत्यख्यान, पाले मुनीश षडवश्यक बुद्धिमान॥८॥

424. The essential duties (Avasyakas) (of a saint) are six :-
1. Equanimity in friends and foes (samayiki);
2. Prayer of twenty four jinas (stava);
3. Worship of twenty four jivas (Vandana);
4. Self analysis and Expiation (Pratikramana);
5. Mortification of self (Kayatsarg/penance): and
6. Self meditation (Pratya khyana).

४२५ **समभावो सामइयं, तणकंचण-सत्तुमित्तविसओ त्ति।**
निरभिस्संगं चित्तं, उचितयपवित्तिप्पहाणं च ॥९॥

लो! काँच को कनक को सम ही निहारे, वैरी सहोदर जिन्हें इकसार सारे।
स्वाध्याय ध्यान करते मन मार देते, वे साधु सामयिक को उर धार लेते॥९॥

425. Equanimity (samayika) consists of giving equal treatment to a blade of grass and a piece of gold or to a friend and a foe. (In other words), it is equivalent to a mind, dominated by proper inclinations/trends/tendencies, a mind that is free of the (abhiswanga) of attachments and aversions.

४२६ **वयणो-च्चारण-किरियं, परिचत्ता वीयराय-भावेण।**
जो झायदि अप्पाणं, परम-समाही हवे तस्स ॥१०॥

वाक्योग रोक जिसने मन मौन धारा, औ वीतराग बन आतम को निहारा।
होती समाधि परमोत्तम ही उसी की, पूजूँ उसे, शरण और नहीं किसी की॥१०॥

426. He who renounces the activity of speaking (In other words who maintains silence) and meditates upon soul in dispassionate/unattached manner, gets united with self (or becomes equanimous).

४२७ **विरदो सव्व-सावज्जे, तिगुत्तो पिहिदिंदिओ।**
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे ॥११॥

आरम्भ दम्भ तज के त्रय गुप्ति पाले, हैं पंच इन्द्रियजयी समदृष्टि वाले।
स्थाई सुसामयिक है उनमें दिखाता, यो 'केवली' परम-शासन गीत गाता॥११॥

427. The rule of the omniscient (kevali) maintains : The equanimity of a saint, - who has given up all activities (Arambh) who is established in three preservations/disciplines (Guptiyukta_; and who has full command over his senses (jitendriya)-is permanent/stablished.

४२८ **जो समो सव्वभूदेसु, थावरेसु तसेसु वा।**
तस्य सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे ॥१२॥

हैं साम्यभाव रखते त्रस थावरों में, स्थाई सुसामयिक हो उन साधुओं में
ऐसा जिनेश मत है मत भूल रे! तू, भाई! अगाध भव-वारिधि मध्य सेतु॥१२॥

428. The rule of the omniscient (kevali) maintains; th
equanimity of a saint,-who treats all the one sensed t
five sensed living beings as equals is permanent (sthayi)

४२९ **उसहादि-जिणवराणं, णाम-णिरुत्तिं गुणाणुकित्तिं च।**
काऊण अच्चिदूण य, तिसुद्धि-पणामो थवो णेओ॥१३॥

आदीश आदि जिन हैं उन गीत गाना, लेना सुनाम उनके यश को बढ़ाना
औ पूजना नमन भी करना उन्हीं को, होता जिनेश स्तव है प्रणमूँ उसी को॥१३॥

429. The second essential duty (Avasyat) of a saint name
'Charturvinsati-stavan' consists of the etymologic
explanations (nirukti) of the names of twenty four tirthank
and the obeisance to them with all the purity of mind, speec
and body. By means of narrations given or songs sung i
their praise (kirtan) and the worship (puja archna) there o
with the offerings of incense flower, rice etc.

४३० **दव्वे खेत्ते काले, भावे य कया-वराह-सोहणयं।**
णिंदण-गरहण-जुत्तो मण-वच-कायेण पडिक्कमणं॥१४॥

द्रव्यों थलों समयभाव प्रणालियों में, हैं दोष जो लग गये, अपने व्रतों में
वाक्काय से मनस से उनको मिटाने, होती प्रतिक्रमण की विधि है सयाने॥१४॥

430. The self analysis and expiations, before the Head of th
order by a saint for his faults (Pratikramana) consists o
the purification process which includes confession
(Alochana) and condemnation of faults (errors),
committed through mind, speech and body as regard
his conduct as a full vower.

४३१ **आलोचण-णिंदण-गरहणाहिं अब्भुट्ठिओ अकरणाए।**
तं भाव-पडिक्कमणं, सेसं पुण दव्वदो भणिअं॥१५॥

आलोचना गरहणा करता स्वनिनदा, जो साधु दोष करता अघ का न धंधा।
होता 'प्रतिक्रमण भाव' मयी वही है, तो शेष द्रव्यमय हैं रुचते नहीं हैं॥१५॥

431. The subjective self analysis and Expiation (for faults) of (a saint consists of criticism condemnation and censuring of the faults of conduct and the (Consequential) resolve not to repeat them. The rest (i.e. the reading of the text of Expiations etc.) is mere objective self analysis and Expiation, (pratikaramana).

४३२ **मोत्तूण वयण-रयणं, रागादी भाव-वारणं किच्चा।**
अप्पाणं जोझायदि, तस्स दु होदि त्ति पडिकमणं॥१६॥

रागादि भावमल को मन से हटाता, हो निर्विकल्प मुनि है निज आत्मध्याता।
सारी क्रिया वचन की तजता सुहाता, सच्चा प्रतिक्रमण लाभ वही उठाता॥१६॥

432. The real/substantial self analysis and Expiations (Pratikramana) consists of self contemplation by one who keeps him self away from the thoughts and attitudes of attachment etc. and who does not (merely) repeat the linguistic-compositions, concerned.

४३३ **झाण-णिलीणो साहू, परिचागं कुणइ सव्व-दोसाणं।**
तम्हा दु झाण-मेव हि, सव्व-दिचारस्स पडिकमणं॥१७॥

स्वाध्याय रूप सर में अवगाह पाता, सम्पूर्ण दोष मल को पल में धुलाता।
सद्ध्यान ही विषम कल्मष पातकों का,सच्चा प्रतिक्रमण है धर सद्गुणों का॥१७॥

433. The self meditating saint renounces all error (faults). Hence such self meditation is (or amounts to) the best expiations of all error (or faults).

४३४ **देवस्सियणियमादिसु, जहुत्तमाणेण उत्तकालम्हि।**
जिणगुणचिंतणजुत्तो, काउसग्गो तणुवसिग्गो॥१८॥

है देह नेह तज के 'जिन-गीत' गाते, साधु प्रतिक्रमण हैं करते सुहाते।
कायोत्सर्ग उनका वह है कहाता, संसार में सहज शाश्वत शांतिदाता॥१८॥

434. The essential duty of penace/self-mortification (kayotsarg) consists of giving up (or renouncing) all attachment with body, while reflecting upon the attributes of Shri jinendra deva for a period of 27 breathings or some other appropriate period during the expiations by day night, fortnight, month, quarter etc., in accordance with rules prescribed in sacred texts (sacred-books).

४३५ **जे केइ उवसग्गा, देव-माणुस-तिरिक्खऽचेदणिया।**
ते सव्वे अधिआसे, काओसग्गे ठिदो संतो॥१९॥

घोरोपसर्ग यदि हो असुरों सुरों से, या मानवों मृगगणों मरुतादिकों से।
कायोत्सर्गरत साधु सुधी तथापि, निस्पन्द शैल, लसते समता-सुधा पी॥१९॥

435. A saint, who is established in penance (kayotsarg) bears all the god made manmade, animalmade and natural disturbances (upsarg/ harassment) peacefully, uncomplainingly and equanimously. (Sambhava purvaka)

४३६ **मोत्तूण-सयल-जप्प-मणागय-सुह-मसुह-वारणं किच्चा।**
अप्पाणं जो झायदि, पच्चक्खाणं हवे तस्स॥२०॥

हो निर्विकल्प तज जल्प-विकल्प सारे, साधु अनागत शुभाशुभ भाव टारें।
शुद्धात्म ध्यान सर में डुबकी लगाते, वे प्रत्याख्यान गुण धार कहैं कहाते॥२०॥

436. The essential duty of self meditation (pratyakhyana) of a saint consists of meditation of soul by one who gives up all desires for speaking (expression) and who prevents all the good and bad (inflow of) karmas, not yet to fruitoned.

४३७ **णिय-भावं णवि मुच्चइ, परभावं णेव गेण्हए केइं।**
जाणदि पस्सदि सव्वं, सोहं इदि चिंतए णाणी॥२१॥

जो आतमा न तजता निज भाव को है, स्वीकारता न परकीय विभाव को है।
दृष्टा बना निखिल का परिपूर्ण ज्ञाता, 'मैं ही रहा वह' सुधी इस भाँति गाता॥२१॥

437. The meditating wise man reflects as follows - 'I' am that supreme element (paramtattva who perceives all and knows all; who never parts with his self and accepts non self".

४३८ **जं किंचि मे दुच्चरितं सव्वं तिविहेण वोसरे।**
सामाइयं तु तिविहं, करेमि सव्वं णिरायारं॥२२॥

जो भी दुराचरण है मुझ में दिखाता, वाक्काय से मनस से उसको मिटाता।
नीराग सामयिक को त्रिविधा करूँ मैं, तो बार-बार तन धार नहीं मरूँ मैं॥२२॥

438. He also thinks; "I fully renounce all my wrong/evil conduct from mind speech and body; and resort to (adopt) threefold equanimity of mind, speech and body (trividha-samayik) in a desireless manner.

(28) तप सूत्र

अ- बाह्य तप

४३९ **जत्थ कसायणिरोहो, बंभं जिणपूयणं अणसणं च।**
सो सव्वो चेव तवो, विसेसओ मुद्धलोयंमि॥१॥

जो ब्रह्मचर्य रहना, 'जिन' ईश पूजा, सारी कषाय तजना, तजना न ऊर्जा।
ध्यानार्थ अन्न तजना 'तप' ये कहाते, प्राय: सदा भविक लोग इन्हें निभाते॥१॥

439. (A) Vahya-tapa(External Austerities) consists of prevention of passions, adoption of celibacy, worship jina and fasting (for the good of self). The devotees particularly adopt such austerities.

४४० **सो तवो दुविहो वुत्तो, बाहिरब्भंतरो तहा।**
बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भन्तरो तवो॥२॥

है मूल में द्विविध रे! तप मुक्तिदाता, जो अन्तरंग-बहिरंग-तया सुहाता।
हैं अंतरंग तप के छह भेद होते, हैं भेद बाह्य-तप के उतने ही होते॥२॥

440. Austerities are of two kinds :
1. External and 2. Internal.
The external austerities are of six kinds. Similar is the case with internal austerities; it is also of six kinds.

४४१ अणसण-मूणोयरिया, भिक्खा-यरिया य रस-परिच्चाओ।
काय-किलेसो संलीणया य, बज्झो तवो होइ॥३॥

'ऊनोदरी' 'अनशना' नित पाल रे! तू, 'भिक्षा क्रिया' रसविमोचन मोक्ष हेतु।
'संलीनता' दुख-निवारक कायक्लेश, ये बाह्य के छह हुए कहते जिनेश॥३॥

441. The six kinds of External Austerities are :
1. Fasting;
2. Eating less than ones full (i.e. less than one has appetrl for);
3. Taking a mental vow to accept food from a house holder on the fulfillment of certain condition or conditions, without letting anyone know about the vow;
4. Renunciation of one or more of six kinds of delicacies e.g. ghee etc.;
5. Sitting and sleeping in lonely place or places devoid of animate beings; and
6. Mortification of the body so long as the mind is not disturbed.

४४२ कम्माण णिज्जरट्ठं आहारं परिहरेइ लीलाए।
एग-दिणादि पमाणं तस्स तवं अणसणं होदि॥४॥

जो कर्म नाश करने समयानुसार, है त्यागता अशन को, तन को संवार।
साधु वही 'अनशना तप' साधता है, होती सुशोभित तभी जग साधुता है॥४॥

442. The austerity of fasting consists of the renunciation (abandonment) of food (by a saint) for the period of a day for the shake shedding karmas (Nirjara).

४४३ जे पयणुभत्तपाणा, सुयहेऊ ते तवस्सिणो समए।
जो अ तवो सुयहीणो, बाहिरयो सो छुहाहारो॥५॥

आहार अल्प करते श्रुत-बोध पाने, वे तापसी समय में कहलाय स्याने।
भाई बिना श्रुत उपोषण प्राण खोना, आत्मावबोध उससे न कदापि होना॥५॥

443. Agam declare (accept) such persons as hermits (tapasvi), who take limited food, for the sake of their studies. Fasting, without studying is like eating hunger (or dying of hunger).

४४४ सो नाम अणसणतवो, जेण मणोऽमंगुलं न चिंतेइ।
जेण न इंदियहाणी, जेण य जोगा न हायंति॥६॥

ना इन्द्रियाँ शिथिल हों मन में न पापी, ना रोग काऽनुभव काय करे कदापि।
होती वही अनशना, जिससे मिली हो, आरोग्यपूर्ण नव चेतनता खिली हो॥६॥

444. The (Real) austerity of fasting consists of abstaining from taking food, in a way in which the mind remains free of all anxieties of evil men (Amaigala/disaster/misfortune) which does not cause loss of (relaxation in/thithilata) sense organs and deterioration in the vibrations of mind, speech and body.

४४५ बलं थामं च पेहाए, सद्धामारोग्गमप्पणो।
खेत्तं कालं च विन्नाय, तहप्पाणं निजुंजए॥७॥

उत्साह-चाह-विधि-राह पदानुसार, आरोग्य-काल निज-देह बलानुसार।
ऐसा करें 'अनशना' ऋषि साधु सारे, शुद्धात्म को नित निरन्तर वे निहारें॥७॥

445. One should adopt fasting after having properly taken into consideration and weighed one's own strength/capacity energy, faith and health and having in view the region and the time; (because over-fasting is harmful).

४४६ उवसमणो अक्खाणं उववासो वण्णिदो समासेण।
तम्हा भुंजंता वि य जिदिंदिया होंति उववासा ॥८॥

लेते हुए अशन को उपवास साधें, जो साधु इन्द्रियजयी निज को अराधें।
हों इन्द्रियाँ शमित तो उपवास होता, धोता कुकर्म मल को, सुख को संजोता॥८॥

446. In short, fasting has been mentioned as the tranquilisation (subsidence) of senses. A saint, who has had full command overhis senses but who takes food is deemed to be on fast.

४४७ छट्ठ-ट्ठम-दसम-दुवालसेहिं अबहुसुयस्स जा सोही।
तत्तो बहुतर-गुणिया, हविज्ज जिमियस्स णाणिस्स ॥९॥

मासोपवास करते लघु-धी यमी में, ना हो विशुद्धि उतनी, जितनी सुधी में।
आहार नित्य करते फिर भी तपस्वी, होते विशुद्ध उर में, श्रुत में यशस्वी॥९॥

447. A wise man, comparatively, gets more purified (even) by regularly taking food, than an ignorant person ,who fasts for days-together.

४४८ जो जस्स उ आहारो, तत्तो ओमं तु जो करे।
जहन्नेणेग-सित्थाई, एवं दव्वेण ऊ भवे ॥१०॥

जो एक-एक करग्रास घटा घटाना, औ भूख से अशन को कम न्यून पाना।
'ऊनोदरी' तप यही व्यवहार से है, ऐसा कहें गुरु, सुदूर विकार से है॥१०॥

448. The unodar-tapa, from substantial point of view, consists of eating less (may be less by a particle or a morsel) than one's appetite or fill.

४४९ गोयर-पमाण-दायग-भायण-माणा-विहाण जं गहणं।
तह एसणस्स गहणं, विविहस्स य वुत्ति परिसंखा ॥११॥

दाता खड़े कलश ले हँसते मिले तो, लेऊँ तभी अशन प्रांगण में मिले तो।
इत्यादि नेम मुनि ले अशनार्थ जाते, भिक्षा क्रिया यह रही गुरु यों बताते॥११॥

449. The "vrathi" parisainkhyana-tapa" of a saint consists of taking a mental vow to accept food in a particular limit; to go begging to a limited number of houses; to accept food only when given by particular type of donor or donors; to take food only when found kept in particular utensil (or utensils) and to take particular food items (Such as mand, sattu etc.).

४५० खीर-दहि-सप्पिमाई, पणीतं पाणभोयणं।
परिवज्जणं रसाणं तु, भणियं रसविवज्जणं ॥१२॥

स्वादिष्ट मिष्ट अति इष्ट गरिष्ट खाना- घी दूध आदि रस हैं इनको न खाना।
माना गया तप वही 'रस त्याग' नामा,धारूँ उसे, वर सकूँ वर-मुक्ति-रामा॥१२॥

450. The "Rasa-parityaga-tapa" of a saint consists of renunciation (abandonment) of milk curd, ghee etc. and juices of nutritive foods and drinks by him.

४५१ एगंत-मणावाए, इत्थी-पसु-विवज्जिए।
सयणासण-सेवणया, विवित्त-सयणासणं ॥१३॥

एकान्त में, विजन कानन मध्य जाना, श्रद्धा समेत शयनासन को लगाना।
होता वही तप सुधारस पेय प्याला, प्यारा 'विविक्त शयनासन' नाम वाला॥१३॥

451. The "vivikta-sayyasan-tapa" of a saint consists of his sitting and sleeping in a lonely place, devoid of men and women, which is (most often) not visited by persons (Anapta).

४५२ ठाणा वीरासणाईया, जीवस्स उ सुहावहा।
उग्गा जहा धरिज्जन्ति, कायकिलेसं तमाहियं ॥१४॥

वीरासनादिक लगा, गिरि गह्वरों में, नाना प्रकार तपना वन कन्दरों में।
है 'कायक्लेश' तप, तापस तापतापी, पुण्यात्म हो धर उसे तज पाप पापी॥१४॥

452. The "kaya-klesha-tapa" of a saint consists of practising the exercises of postures (such as virasan) in dangerous places like forests, caves etc. exercises, that please the soul.

४५९ णंता-णंत-भवेण, समज्जिअ-सुह-असुह-कम्म-संदोहो।
तव-चरणेण, विणस्सदि, पायच्छित्तं तवं तम्हा॥२१॥

वर्षों युगों भवभवों समुपार्जितों का, होता विनाश तप से भवबंधनों का।
प्रायश्चिता इसलिए 'तप' ही रहा है,त्रैलोक्य-पूज्य प्रभु ने जग को कहा है॥२१॥

459. The austerities destroy the molecules of auspicious and inauspicious karmas (shubha shubha-katma-saidohah). Hence, austerities amount to Expiation.

४६० आलोयण पडिकमणं, उभयविवेगो तहा विउस्सगो।
तब छेदो मूलं वि य परिहारो चेव सद्दहणा॥२२॥

आलोचना अरु प्रतिक्रमणोभया है, व्युत्सर्ग, छेद, तप, मूल, विवेकता है।
श्रद्धान और परिहार प्रमोदकारी, प्रायश्चिता दशविधा इस भाँति प्यारी॥२२॥

460. The Expiation is of ten kinds;
1. Full and voluntary confession to the Head of the order (Alochana);
2. Self analysis and repentance for faults (pratikramana);
3. Doing both (ubaya);
4. Giving up a much abandonment of beloved object (e.g. particular food or drink) (vivka);
5. Giving up attachment with the body (vyutsarga);
6. Austerities of a particular kind prescribe in a penance (tapa);
7. Cutting short the standing of a saint by way of degradation (chheda);
8. Out rooting the standing of a saint (muta);
9. Rustication for some time (parihar); and
10. Fresh readmission after expulsion from the order (upasthpana).

४६१ अणाभोग-किदं कम्मं, जं किं वि मणसा कदं।
तं सव्वं आलोचेज्ज हु, अव्वाखित्तेण चेदसा॥२३॥

विक्षिप्त-चित्तवश आगत दोषकों की, हेयों अयोग्य अनभोग-कृतादिकों की।
आलोचना निकट जा गुरु के करो रे, भाई, नहीं कुटिलता उर में धरो रे॥२३॥

461. The auspicious as well as inauspicious karmas, perpetrated by the mind, speech and body of the saint are of two kinds :
1. (Abhoga-krita) and 2. (Anabhoga-krita).
Karmas, known to others are called abhoga krita; and those not known to others are called Anabhoga-krita. A saint should make full confession of both kinds of karmas and the defects thereof before the head of the order, with an undisturbed mind (in a quiet manner).

४६२ जह बालो जपन्तो, कज्जमकज्जं च उज्जुयं भणइ।
तं तह आलोइज्जा, माया-मय-विप्पमुक्को वि॥२४॥

माँ को यथा तनुज, कार्य अकार्य को भी, है सत्य, सत्य कहता, उर पाप जो भी।
मायाभिमान तज, साधु तथा अघों की,गाथा कहें स्वगुरु को, दुखदायकों की॥२४॥

462. Just as a child discloses his commissions and omissions to his mother, plainly and easily; similarly a saint should confess his faults (to the head of the order) plainly/easily deceitlessly and remaining free of all intoxications.

४६३-४६४ जह कंटएण विद्धो, सव्वंगे वेयणद्दिओ होइ।
तह चेव उद्धियम्मि उ, निस्सल्लो निव्वुओ होइ॥२५॥
एवमणुद्धिय दोसो, माइल्लो तेणं दुक्खिओ होइ।
सो चेव चत्तदोसो, सुविसुद्धो निव्वुओ होइ॥२६॥

है शल्य शूल चुभते जब पाद में जो, दुर्वेदनानुभव पूरण अंग में हो।
ज्यों ही निकाल उनको हम फेंक देते, त्यों ही सुशीघ्र सुखसिंचित श्वास लेते॥२५॥
जो दोष को प्रकट ना करता छुपाता, मायाभिभूत यति भी अति दुःख पाता।
दोषाभिभूत मन को गुरु को दिखाओ, निःशल्य ही विमल हो सुख-शांति पाओ॥२६॥

463-464. Just as a thorn, when struck into any part of the body

makes the whole body painful and when the thorn so stuck is taken out the whole body (inclusive of all parts thereof) becomes painless (without thorn) and undisturbed; similarly a deceitful (Mayavi/wily) saint, who does not confess his faults before his preceptor remains unhappy or disturbed; where as a good saint who confesses his fault before his preceptor becomes purified and happy. No thorn remains in his mind.

४६५ **जो पस्सदि अप्पाणं, सम-भावे संठवित्तु परिणामं।**
आलोयण-मिदि जाणह, परम-जिणंदस्स उवएसं॥२७॥

आत्मीय सर्व परिणाम विराम पावें, वे साम्य के सदन में सहसा सुहावें।
डूबो लखो बहुत भीतर चेतना में, आलोचना बस यही 'जिनदेशना' में॥२७॥

465. Shri Jinendra--deva has preached; confession consists of looking into the soul (self-introspection) equanimously (Hence confession is equal to self introspection together with equanimity).

४६६ **अब्भुट्ठाणं अंजलिकरणं तहेवासणदायणं।**
गुरु-भत्ति-भाव-सुस्सूसा, विणओ एस वियाहिओ॥२८॥

प्रत्यक्ष सम्मुख सुधी गुरु सन्त आते, होना खड़े, कर जुड़े शिर को झुकाते।
दे आसनादि करना गुरु-भक्ति सेवा, माना गया विनय का तप ओ सदैवा॥२८॥

466. The (austerity of) Reverence (vinaya) means and includes standing up before elderly omniscient and learned persons saluting them with folded hands; making them seated on higher seats (e.g. stools/carpets etc.) offering sincere devotion to and doing service of elderly persons.

४६७ **दंसण-णाणे विणओ चरित्त-तव-ओवचारिओ विणओ।**
पंचविहो खलु विणओ पंचम-गइ-णायगो भणिओ॥२९॥

चारित्र, ज्ञान, तप दर्शन, औपचारी, ये पाँच हैं विनय भेद, प्रमोदकारी।
धारो इन्हें विमल-निर्मल जीव होगा, दुःखावसान, सुख आगम शीघ्र होगा॥२९॥

467. The austerity of reverence is of five kinds Reverence for right faith (Darshan-vinava); Reverence for Right knowledge (jnav-vinaya); Reverence for Right conduct (charetra-vinaya); Reverence for observing proper forms of respect such as folding hands bowing etc. (upachara-vinaya); and Reverence for austerities (Tapa-vinaya). These Reverence carry one to fifth grade of life (salvation).

४६८ **एकम्मि हीलियम्मि, हीलिया हुंति ते सव्वे।**
एकम्मि पूइयम्मि, पूइया हुंति सव्वे॥३०॥

है एक का वह समादर सर्व का है, तो एक का यह अनादर विश्व का है।
हो घात मूल पर तो द्रुम सूखता है, दो मूल में सलिल, पूरण फूलता है॥३०॥

468. The disregard (tirakar/disrespect) of one is the disregard of all and the worship of one is the worship of all. (Therefore, wherever some elderly, person is found he should be properly reverred).

४६९ **विणओ सासणे मूलं, विणीओ संजओ भवे।**
विणयाओ विप्पमुक्कस्स, कओ धम्मो कओ तवो? ॥३१॥

है मूल ही विनय आर्हत-शासनों का, हो संयमी विनय से घर सद्गुणों का।
वे धर्म-कर्म तप भी उनके वृथा हैं, जो दूर हैं विनय से सहते व्यथा हैं॥३१॥

469. Reverence is the origin of the rule of jina. One should be respectful (vinita) with restraints and austerities. What conduct and austerities can be observed by him, who lack reverence.

४७० **विणओ मोक्खद्दारं, विणयादो संजमो तवो णाणं।**
विणएणा-राहिज्जइ, आयरिओ सव्वसंघो य॥३२॥

उद्धार का विनय द्वार उदार भाता, होता यही सुतप संयम-बोध धाता।
आचार्य संघ भर की इससे सदा हो, आराधना, विनय से सुख-सम्पदा हो॥३२॥

470. Reverence is the door (gate way) of salvation. Reverence give restraint, austerities and knowledge. The Head of order (Acharya) and the whole order (sarva sanigh) is worshipped by way of Reverence.

४७१ विणयाहीया विज्जा, देति फलं इह परे य लोगम्मि।
न फलंति विणयहीणा, सस्साणि व तोयहीणाइं॥३३॥

विद्या मिली विनय से इस लोक में भी, देती सही सुख वहाँ परलोक में भी।
विद्या न पै विनय-शून्य सुखी बनाती,शाली,बिना जल कभी फल-फूल लाती॥३३॥

471. The knowledge acquired with Reverence is fruitful in this world as well as in next world. Knowledge without reverence is as fruitless as the farming or rice without (irrigational) water.

४७२ तम्हा सव्व-पयत्तेण, विणयत्तं मा कदाइ छंडिज्जो।
अप्प-सुदो वि य पुरिसो खवेदि कम्माणि विणएण॥३४॥

अल्पज्ञ किन्तु विनयी 'मुनि' मुक्ति पाता, दुष्टाष्ट-कर्म-दल को पल में मिटाता।
भाई अतः विनय को तज ना कदापि, सच्ची सुधा समझ के उसको सदा पी॥३४॥

472. Therefore reverence should not be given up, (at any cost) all the efforts be made to maintain it. A man who has not studied a number of scriptures is also capable of destroying his karmas, by means of reverence.

४७३ सेज्जा-गास-णिसेज्जा उवधी पडिलेहणा उवग्गहिदे।
आहारो-सह-वायण-विकिंचणुव्वत्तणादीसु॥३५॥

जो अन्न-पान-शयनासन आदिकों को, देना यथा-समय सज्जन साधुओं को।
कारुण्य-द्योतक यही भवताप-हारी, सेवामयी सुतप है शिवसौख्यकारी॥३५॥

473. The austerity of "vaiyavratti' consists of the service of

saints with way oblising them (Upakreta) bed (shayya), residence (vasti) seat (Asan) and instruments of study (pratilekhan) with (the provisions of) food, medicines, reading (vachana), Excretion (mal-mutra visarjan) and worship/obeisance (Vandana).

४७४ अद्धाण तेण-सावद-राय-णदी-रोधणा-सिवे ओमे।
वेज्जावच्चं उत्तं, संगह-सारक्खणो-वेदं॥३६॥

साधु विहार करते करते थके हों, वार्धक्य की अवधि पै बस आ रुके हों।
श्वनादि से व्यथित हो नृप से पिटाये, दुर्भिक्ष रोगवश पीड़ित हों सताये।
रक्षा संभाल करना उनकी सदैवा, जाता कहा 'सुतप' तापस साधु-सेवा॥३६॥

474. The austerity of vaiyavratya includes protection and care of those who are tired of walking who are aggrieved due to the persecution by thieves dangerous beasts, king, impediment of rivers, diseased like plague and famine etc.

४७५ परियट्टणा य वायण, पडिच्छणा-णुवेहणा य धम्मकहा।
थुदि-मंगल-संजुत्तो, पंचविहो होइ सज्झाओ॥३७॥

'सद्वाचना' प्रथम है फिर 'पूछना' है, है 'आनुप्रेक्ष' क्रमशः 'परिवर्तना' है।
'धर्मोपदेश' सुखदायक है सुधा है, स्वाध्याय-रूप-तप पावन पंचधा है॥३७॥

476. The five kinds of austerities of study consist of : Reciprocation, Reading, Enquiry on a doubtful point, Reflection on what is read and lecturing or delivering descourse in respectful manner.

४७६ पूयादिसु णिरवेक्खो, जिण-सत्थं जो पढेइ भत्तीए।
कम्ममल-सोहणट्ठं, सुयलाहो सुहयरो तस्स॥३८॥

आमूलतः बल लगा विधि को मिटाने, पै ख्याति-लाभ-यश पूजन को न पाने।
सिद्धान्त का मनन जो करता-कराता, पा तत्वबोध बनता सुखधाम धाता॥३८॥

476. The study of a saint who devotionally studies th scriptures of jina, with the object of washing the filth o karmas, without expecting respect or regard i consequence is good (pleasing) to him as well as to other (sva-para-sukhakari).

४७७ सज्झायं जाणंतो, पंचिंदियसंवुडो तिगुत्तो य।
होइ य एकग्गमणो, विणएण समाहिओ साहू ॥३९॥

होते नितान्त समलंकृत गुप्तियों से, तल्लीन भी विनय में मृदु वल्लियों से एकाग्र-मानस जितेंद्रिय अक्ष-जेता,स्वाध्याय के रसिक वे ऋषि साधु नेता ॥३९॥

477. A studious saint (swadhyayi-sadhu/a saint wel acquainted with scriptures) exercises control over) fiv senses; is equipped with three preservation (Gupti yukta); is full of Reverevne; and is of concentrated mind

४७८ णाणेण-झाण-सिज्झी, झाणादो सव्व-कम्म-णिज्जरणं।
णिज्जरणफलं मोक्खं, णाणब्भासं तदो कुज्जा ॥४०॥

सद्ध्यान सिद्धि जिन आगम ज्ञान से हो, तो निर्जरा करम की निज ध्यान से हो हो मोक्ष-लाभ सहसा विधि निर्जरा से, स्वाध्याय में इसलिए रम जा जरा से ॥४०॥

478. Knowledge provides (assists in) Performance of meditation Meditation assists in the shedding of karmas. The fruit en of shedding of karmas is salvation. Hence, one should incessantly/constantly attempt to acquire knowledge.

४७९ बारसविहम्मि वि तवे, अब्भिंतरबाहिरे कुसलदिट्ठे।
न वि अत्थि न वि य होही, सज्झायसमं तवोकम्मं ॥४१॥

स्वाध्याय-सा न तप है, नहिं था, न होगा, यों मानना अनुपयुक्त कभी न होगा सारे इसे इसलिए ऋषि संत त्यागी, धारें, बनें विगतमोह, बनें विरागी ॥४१॥

479. Of all the twelve austerities- External as well as internal- there is, was, and shall be none like the austerity of study.

४८० सयणासण-ठाणे वा, जे उ भिक्खू न बावरे।
कायस्स विउस्सग्गो, छट्ठो सो परिकित्तिओ ॥४२॥

जो बैठना शयन भी करना तथापि, चेष्टा न व्यर्थ तन की करना कदापि।
व्युत्सर्ग रूप तप है, विधि को तपाता, पीताभ हेम-सम आतम को बनाता ॥४२॥

480. The sixth-austerity of mortification of body (Kayotsarg) consists of behaving like a wooden plank; e.g. abstaining from useless activities of body while sleeping sitting and standing.

४८१ देहमइजडुसुद्धी, सुहदुक्खतितिक्खया अणुप्पेहा।
झायइ य सुहं झाणं, एगग्गो काउसग्गम्मि ॥४३॥

कायोत्सर्ग तप से मिटती व्यथाएँ, हो ध्यान चित्त स्थिर द्वादश भावनाएँ।
काया निरोग बनती मति जाड्य जाती, संत्रास सौख्यसहने उर शक्ति आती ॥४३॥

481. The austerity of kayotsarg is useful in the following manner-
1. It destroy the rigidity (jadata/stupefaction/stiffness) of the body due to the removal of mucus etc.
2. It eliminates (removes) the inflexibility/ stiffness/ rigidity of intelligence due to vigilance;
3. It develops one's capacity to forbear the pleasures and pains;
4. It gives proper opportunities for reflections; and
5. It assists the mind in the performance of righteous and pure meditation.

४८२ तेसिं तु तवो ण सुद्धो, निक्खंता जे महाकुला।
जं नेवन्ने वियाणंति, न सिलोगं पवेज्जइ ॥४४॥

लोकेषनार्थ तपते उन साधुओं का, ना शुद्ध हो तप महाकुलधारियों का।
शंसा अतः न अपने तप की करो रे, जाने न अन्य जन यों तप धार लो रे ॥४४॥

482. The austerities of the high family persons, who get